अध्यक्ष, मेसर्स ब्रुक बॉण्ड इंडिया प्राइवेट लिमिटेड

बनाम

चन्द्र नाथ चौधरी

3 *सितम्बर*, 1968

[जे. एम. शेलट, वी. भार्गव तथा सी. ए. वैद्यालिंगम न्यायमूर्तिगण]

बिहार दुकान एवं स्थापना अधिनियम, 1953, धारा 26 (1) तथा (2)—दायरा—क्या श्रम न्यायालय अथवा सक्षम प्राधिकारी का क्षेत्राधिकार केवल बिहार दुकान एवं स्थापना नियम, 1955 के नियम 20 के अंतर्गत आने वाले कदाचार के मामलों तक सीमित है या 'किसी भी कदाचार' तक—धारा 26 (1) के परंतुक का दायरा—क्या धारा 26 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार, औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 33क के अंतर्गत क्षेत्राधिकार के समान है।

उत्तरदाता को अगस्त, 1954 में अपीलकर्ता कंपनी द्वारा एक विक्रेता के रूप में नियुक्त किया गया। उसे 1956 में बिक्री को बढ़ाने हेतु काठमांडू भेजा गया; अपीलकर्ता कंपनी ने काठमांडू में अपने उत्पादों का भंडारण एवं बिक्री को प्रोत्साहित करने के लिए थोक व्यापारियों की एक फर्म भी नियुक्त की थी। दिसम्बर, 1960 में थोक व्यापारियों और उत्तरदाता के बीच मतभेद उत्पन्न हुए और फर्म ने अपीलकर्ता को 11,000 रुपये की नकद कमी की सूचना दी, जिसके बारे में यह आरोप लगाया गया कि उक्त राशि दो रसीदों के बदले उत्तरदाता को अग्रिम दी गई थी। 27 दिसम्बर, 1960 को उत्तरदाता ने अपीलकर्ता कंपनी को सूचित किया कि उक्त रसीदें थोक व्यापारियों द्वारा उससे जबरन प्राप्त की गई थीं और कंपनी से निर्देश प्राप्त होने तक वह उनके विरुद्ध एक आपराधिक शिकायत दायर कर रहा है। इसके पश्चात कंपनी ने उत्तरदाता को आरोप-पत्र प्रदान किया, जिसमें यह आरोप लगाया गया कि उसने थोक व्यापारियों से व्यक्तिगत ऋण लेकर, उन ऋणों से इनकार कर, तथा थोक

व्यापारियों के विरुद्ध आपराधिक शिकायत दायर कर, कंपनी के कर्मचारी के रूप में विश्वास एवं दायित्व की स्थिति का दुरुपयोग किया और इस प्रकार कंपनी की प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचाई। इन आरोपों की जाँच एक जाँच अधिकारी द्वारा की गई, जिसने अपनी प्रतिवेदन में, *अन्य बातों के साथ*, यह पाया कि उत्तरदाता के विरुद्ध अनेक आरोप संतोषजनक रूप से सिद्ध हुए हैं और उसने कंपनी द्वारा उसमें निहित किए गए विश्वास का दुरुपयोग किया है। 20 सितम्बर, 1961 दिनांकित आदेश द्वारा उत्तरदाता को कंपनी की सेवा से "आपके द्वारा किए गए तथा आपके विरुद्ध सिद्ध किए गए उपर्युक्त कदाचार के कारण तत्काल प्रभाव से" निष्कासित कर दिया गया।

निष्काषण के आदेश से आहत होकर, उत्तरदाता ने बिहार दुकान एवं स्थापना अधिनियम, 1953 की धारा 26 के अंतर्गत श्रम न्यायालय, पटना में एक शिकायत दायर की। श्रम न्यायालय ने पक्षकारों की सहमति से घरेलू जाँच में अभिलेखित साक्ष्य को वास्तविक साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया तथा कुछ अन्य साक्ष्य भी ग्रहण किए और अंततः, *अन्य बातों के साथ*, यह पाया कि उत्तरदाता का यह दावा सही था कि दो रसीदें थोक व्यापारियों द्वारा उससे जबरन प्राप्त की गई थीं; यह कि थोक व्यापारियों से किसी भी प्रकार का ऋण लेने से उसका इनकार सही था; तथा यह कि कंपनी का यह मामला कि थोक व्यापारियों ने उत्तरदाता को 11,000 रुपये ऋण के रूप में दिए थे, सही नहीं था। अतः श्रम न्यायालय ने उत्तरदाता की शिकायत स्वीकार की, कंपनी द्वारा पारित निष्काषण के आदेश को अपास्त कर दिया और उसकी पुनर्नियुक्ति का निर्देश दिया।

इस न्यायालय में अपील में, कंपनी की ओर से यह तर्क दी गई— (i) कि कंपनी द्वारा पारित आदेश *साधारण* निष्काषण का आदेश था, न कि दंड के रूप में पारित आदेश; कि जो घटनाएँ घटित हुईं, उनके प्रकाश में कंपनी के लिए उत्तरदाता पर विश्वास और भरोसा बनाए रखना संभव नहीं था और उसे सेवा में बनाए रखने से इंकार करना उचित था; (ii) कि धारा

26 श्रम न्यायालय को केवल बिहार दुकान एवं स्थापना नियम, 1955 के नियम 20 में परिभाषित कदाचार के मामलों में ही शिकायत सुने जाने का अधिकार देती है और आरोप-पत्र में उत्तरदाता के विरुद्ध आरोपित कदाचार नियम 20 के अंतर्गत नहीं आता; अतः धारा 26 (2) तथा (5) का वर्तमान मामले में कोई अनुप्रयोग नहीं है; तथा (iii) कि जब कदाचार नियम 20 के अंतर्गत नहीं आता, तब घरेलू जाँच के पश्चात कंपनी द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप करने का श्रम न्यायालय का क्षेत्राधिकार सीमित है, अर्थात् केवल तब, जब प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ हो या आदेश विकृत हो, या जहाँ उत्पीड़न अथवा अनुचित श्रम व्यवहार हो; और ऐसे मामलों में श्रम न्यायालय का क्षेत्राधिकार औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 33क के अंतर्गत क्षेत्राधिकार के समान होगा।

अभिनिर्धारित : अपील निरस्त की जाती है।

(i) यह तर्क कि कंपनी उत्तरदाता को सेवा में बनाए रखने से इंकार करने में न्यायोचित थी, दो मान्यताओं पर आधारित था; कि उत्तरदाता ने थोक व्यापारियों से ऋण लिए थे और कि प्रबंधन का आदेश *साधारण* निष्काषण का आदेश था। श्रम न्यायालय का यह निष्कर्ष कि उत्तरदाता ने थोक व्यापारियों से ऋण नहीं लिए थे, अनुच्छेद 136 के अंतर्गत वर्तमान अपील के दायरे में नहीं है। अपीलकर्ता का यह तर्क कि उसका आदेश *साधारण* निष्काषण का आदेश था और दंड के रूप में नहीं, अभिलेख के प्रतिकूल तथा स्पष्टतः अस्थिर है। निष्काषण का आदेश प्रबंधन द्वारा जाँच अधिकारी के निष्कर्षों के परिणामस्वरूप पारित किया गया था और उसमें स्पष्ट शब्दों में कहा गया था कि वह दंड के रूप में पारित किया गया है। [926 एच-927 सी]

(ii) धारा 26 की उप-धाराओं (1) तथा (2) के उपबंधों से यह स्पष्ट है कि कोई नियोक्ता अपने कर्मचारी को बिना युक्तियुक्त कारण के तथा बिना एक माह की सूचना या उसके बदले एक माह का वेतन दिए, न तो पदच्युत कर सकता है और न ही निष्कासित कर

सकता है। यहाँ तक कि जब नियोक्ता यह आरोप लगाता है कि उसके पास अपने कर्मचारी को निष्कासित या पदच्युत करने के लिए युक्तियुक्त कारण था, तब भी "ऐसे पदच्युत या निष्कासित किए गए" कर्मचारी को उप-धारा (2) के अंतर्गत तीन में से किसी एक आधार पर शिकायत दायर करने का अधिकार है, अर्थात्—कि वास्तव में कोई युक्तियुक्त कारण नहीं था, या कि उसे कोई सूचना नहीं दी गई, या कि वह "कोई भी कदाचार" का दोषी नहीं था। "किसी भी कदाचार" शब्द यह दर्शाते हैं कि उप-धारा (2) केवल नियम 20 में वर्णित कदाचार तक सीमित नहीं है। उप-धारा (1) के परंतुक का एकमात्र प्रभाव यह है कि उन मामलों में सूचना की आवश्यकता से छूट दी जाए जहाँ किसी कर्मचारी की सेवाएँ ऐसे कदाचार के कारण समाप्त की जाती हैं जिसे राज्य सरकार ने नियम 20 में सम्मिलित किया है। उस परंतुक में इससे अधिक कुछ पढ़ना, परंतुक तथा उप-धाराओं (1) और (2) की स्पष्ट भाषा के प्रतिकूल होगा। [928 एच,929 एफ]

(iii) धारा 26 के अंतर्गत कार्यवाहियाँ घरेलू जाँच में या उसके परिणामस्वरूप पारित आदेश के विरुद्ध अपील के रूप में नहीं हैं; वे स्वतंत्र और मौलिक कार्यवाहियाँ हैं, जिनमें सक्षम प्राधिकारी (इस प्रकरण में श्रम न्यायालय) को उसके समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य के मूल्यांकन पर, न कि घरेलू जाँच में प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर, अपने स्वतंत्र निष्कर्षों पर पहुँचना होता है। ऐसा होने पर यह नहीं कहा जा सकता कि धारा 26 के अंतर्गत सक्षम प्राधिकारी का क्षेत्राधिकार औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 33क के अंतर्गत आने वाले मामलों की भाँति सीमित है। [930 सी-डी]

जगदीश वस्त्रालावा बनाम बिहार राज्य, ए.आई.आर. 1964 पटना 180; *स्पेंसर एंड कंपनी लिमिटेड बनाम श्रम आयुक्त के मुख्यालय सहायक,* [1963] 2 एल.आई.जे. 603—संदर्भित।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार : 1966 की दीवानी अपील सं. 630।

बिहार दुकान एवं स्थापना अधिनियम, पटना के अंतर्गत एक प्राधिकारी, श्रम न्यायालय, द्वारा बी.एस. एवं ई. वाद सं. 23/1961 में दिनांक 3 फरवरी, 1965 को दिए गए निर्णय के विरुद्ध विशेष अनुमति द्वारा अपील।

अपीलकर्ताओं की ओर से *एच. आर. गोखले, एम. सी. भंडारे, जतिनदास महाजन, ओ. सी. माथुर, जे. बी. दादाचांजी* तथा *रविंदर नारायण*।

उत्तरदाता की ओर से *ए. एस. आर. चारी* तथा *ए. के. नाग*।

न्यायालय का निर्णय निम्नलिखित द्वारा दिया गया।

न्यायमूर्ति शेलट यह अपील विशेष अनुमति द्वारा उस आदेश के विरुद्ध है, जिसके द्वारा श्रम न्यायालय, पटना ने अपीलकर्ता कंपनी द्वारा उत्तरदाता के विरुद्ध सेवा से निष्काषण का आदेश अपास्त किया और उसकी पुनर्नियुक्ति का भी निर्देश दिया।

उत्तरदाता को 19 अगस्त, 1954 को नियुक्ति-पत्र द्वारा एक विक्रेता के रूप में नियुक्त किया गया था, जिसके खंड (9) में यह प्रावधान था कि कोई भी पक्ष 28 दिनों की सूचना देकर सेवा-संविदा को समाप्त कर सकता है। अपीलकर्ता कंपनी ने एक करार द्वारा काठमांडू में मेसर्स हरि भगत लक्ष्मी भगत को अपने थोक व्यापारी के रूप में भी नियुक्त किया था। उक्त करार में यह प्रावधान था कि थोक व्यापारियों को कंपनी के पास 20,000 रुपये की राशि जमा करनी होगी, कि उन्हें उनके द्वारा की गई सभी बिक्री के संबंध में बिक्री प्राप्तियों पर 3 प्रतिशत की दर से कमीशन दिया जाएगा, कि थोक व्यापारियों को दी गई वस्तुओं के भंडार में से कंपनी का अपना विक्रेता, जो काठमांडू में पदस्थापित हो, भी बिक्री करने का अधिकारी होगा और कि दोनों द्वारा की गई बिक्री की प्राप्तियाँ कंपनी को उसके विक्रेता के माध्यम से प्रेषित की जाएँगी। 26 अगस्त, 1956 को कंपनी ने उत्तरदाता को बिक्री को बढ़ावा देने तथा उक्त थोक व्यापारियों की बिक्री में सहायता करने के लिए काठमांडू भेजा। इस व्यवस्था से कंपनी को 1960 के मध्य तक कोई कठिनाई प्रतीत नहीं हुई। किंतु यह कहा गया कि इसके

पश्चात उत्तरदाता बिक्री प्राप्तियों को प्रेषित करने में अनियमित हो गया और अपने कार्य को नियमित करने के आश्वासनों के बावजूद उसने ऐसा नहीं किया। परिणामस्वरूप कंपनी ने एक पी. एन. सक्सेना तथा एक राहत विक्रेता, के. बी. सिन्हा, को काठमांडू भेजा, जिन्होंने 5 दिसम्बर, 1960 को उत्तरदाता से प्रभार ग्रहण किया। 6 दिसम्बर, 1960 को कंपनी को थोक व्यापारियों से एक तार प्राप्त हुआ कि उत्तरदाता द्वारा 11,000 रुपये की नकद कमी है। तार प्राप्त होने पर पटना शाखा के शाखा प्रबंधक के. पी. सिन्हा काठमांडू गए और एक प्रारंभिक जाँच की, जिसके दौरान यह कहा गया कि उत्तरदाता ने यह स्वीकार किया कि उसने थोक व्यापारियों से व्यक्तिगत ऋण लिए थे और उसने 6,400 रुपये तथा 4,600 रुपये के दो ऋण-पत्र निष्पादित किए थे। यह भी कहा गया कि उत्तरदाता ने 7, 8, 9 तथा 10 दिसम्बर, 1960 को उक्त शाखा प्रबंधक को पत्र लिखकर यह स्वीकार किया कि उसने थोक व्यापारियों से उक्त ऋण प्राप्त किए थे। 9 दिसम्बर, 1960 को थोक व्यापारियों ने कंपनी को लिखा कि उन्होंने उक्त दोनों राशियाँ उत्तरदाता को कंपनी को प्रेषित करने के लिए दी थीं और इसके लिए आवश्यक प्रत्यय-पत्र उन्हें भेजने का अनुरोध किया। 28 दिसम्बर, 1960 को थोक व्यापारियों ने उक्त दोनों राशियों के संबंध में उत्तरदाता द्वारा निष्पादित बताई गई दो रसीदों की प्रतिलिपियाँ भी संलग्न कीं। 27 दिसम्बर, 1960 को उत्तरदाता ने कंपनी को सूचित किया कि उक्त रसीदें थोक व्यापारियों द्वारा उससे जबरन प्राप्त की गई थीं और कि कंपनी से निर्देश प्राप्त होने तक वह उनके विरुद्ध आपराधिक शिकायत दायर कर रहा है। यह स्पष्ट है कि थोक व्यापारियों ने अपना मामला बदल दिया था; प्रारंभ में उनका मामला यह था कि उक्त दोनों राशियाँ उत्तरदाता को ऋण के रूप में दी गई थीं और बाद में उन्होंने यह कहा कि उक्त दोनों राशियाँ उत्तरदाता को प्रेषण के लिए दी गई थीं किंतु उत्तरदाता ने उन्हें प्रेषित नहीं किया और इसलिए 11,000 रुपये की नकद कमी है। दूसरी ओर, उत्तरदाता का मामला यह था कि उसने थोक व्यापारियों से कोई ऋण नहीं लिया था, कि थोक व्यापारियों के साथ हुए उक्त करार के विपरीत, पटना शाखा के कंपनी अधिकारियों ने थोक व्यापारियों द्वारा की गई उधार बिक्री में

मिलीभगत की, कि 5 दिसम्बर, 1960 को उत्तरदाता द्वारा एक नए विक्रेता को प्रभार सौंपे जाने की जानकारी मिलने पर थोक व्यापारी घबरा गए और यह समझते हुए कि वे उक्त उधार बिक्री की प्राप्तियाँ वसूल नहीं कर पाएँगे, उन्होंने तथा उक्त शाखा प्रबंधक के. पी. सिन्हा ने मिलकर उत्तरदाता से उक्त ऋण-पत्र निष्पादित कराने की व्यवस्था की, कि तत्पश्चात थोक व्यापारियों ने बल एवं दबाव द्वारा उक्त दो रसीदें भी उससे जबरन प्राप्त कर लीं, और इसलिए थोक व्यापारियों का यह कथन कि 11,000 रुपये की नकद कमी थी, असत्य था। इसके पश्चात कंपनी ने उत्तरदाता को एक आरोप-पत्र प्रदान किया, जिसमें यह आरोप लगाया गया कि उसने कंपनी के कर्मचारी के रूप में विश्वास एवं दायित्व की स्थिति का दुरुपयोग किया और इस प्रकार कंपनी की प्रतिष्ठा को गिराया तथा निम्नलिखित कदाचार किए, अर्थात्—

> "आपने थोक व्यापारी हरि भगत लक्ष्मी भगत द्वारा आपके विरुद्ध लगाए गए आरोपों को अवसर दिया है, जो आपके द्वारा व्यक्तिगत क्षमता में स्वीकार्य रूप से किए गए लेन-देन से संबंधित हैं।
>
> थोक व्यापारी का आरोप है कि उसने आपको 2-10-1960 को 6,400 रुपये तथा 3-12-1960 को 4,600 रुपये, कुल 11,000 रुपये दिए। आप थोक व्यापारी से इस धनराशि की प्राप्ति से इनकार करते हैं और वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है कि आपने कुछ रसीदें आपसे जबरन प्राप्त किए जाने के आरोप में थोक व्यापारी के विरुद्ध आपराधिक शिकायत दायर की है।
>
> ऐसे आचरण एवं व्यवहार द्वारा आपने काठमांडू में कंपनी की प्रतिष्ठा को गिराया है और इस प्रकार आपने कंपनी के हितों के प्रतिकूल एक घोर कदाचार किया है।
>
> इसके अतिरिक्त, आपके इस प्रकार के गैर-जिम्मेदाराना आचरण से आपने कंपनी द्वारा आप में निहित विश्वास को भी खो दिया है।"

आरोप-पत्र में उत्तरदाता से यह कारण बताने के लिए कहा गया कि "आपके द्वारा किए गए उपर्युक्त घोर कदाचार के लिए आपको सेवा से पदच्युत क्यों न किया जाए या अन्यथा उपयुक्त कार्यवाही क्यों न की जाए।" यह स्पष्ट है कि उत्तरदाता के विरुद्ध उसके कृत्यों के रूप में आरोपित कदाचार निम्नलिखित थे—

1. थोक व्यापारियों से व्यक्तिगत ऋण लेना,
2. उन ऋणों से उसके द्वारा इनकार करना तथा थोक व्यापारियों के विरुद्ध आपराधिक शिकायत दायर करना, और
3. कंपनी के कर्मचारी के रूप में विश्वास एवं दायित्व की स्थिति का दुरुपयोग करना और इस प्रकार कंपनी की प्रतिष्ठा को गिराना।

अंतिम आरोप स्पष्टतः आरोपित कृत्य (1) और (2) से निकाला गया निष्कर्ष है और कोई स्वतंत्र कदाचार नहीं है। यह उल्लेखनीय है कि कंपनी का यह मामला नहीं था कि उत्तरदाता ने कंपनी की धनराशि का गबन किया था; कंपनी का प्रारंभ से ही यह मामला था कि जिन धनराशियों के संबंध में उत्तरदाता द्वारा उक्त ऋण-पत्र और उक्त रसीदें निष्पादित करने की बात कही गई थी, वे कंपनी की धनराशि नहीं थीं बल्कि थोक व्यापारियों द्वारा दिए गए ऋण थे। उक्त आरोप-पत्र के उत्तर में, उत्तरदाता ने उक्त आरोपित लेन-देन से इनकार किया; उसका मामला, जैसा कि पूर्वोक्त है, यह था कि उक्त ऋण-पत्र, उक्त रसीदें तथा 7 से 10 दिसम्बर, 1960 तक उसके द्वारा लिखे गए उक्त चारों पत्र या तो शाखा प्रबंधक के प्रभाव में उससे प्राप्त किए गए थे या थोक व्यापारियों द्वारा बल एवं दबाव के अधीन उससे जबरन प्राप्त किए गए थे। हमारे समक्ष यह स्वीकार किया गया कि अपीलकर्ता कंपनी ने अपने सेवकों के लिए आचरण के कोई नियम निर्धारित नहीं किए थे और यह भी कि ऐसा कोई नियम नहीं था जो कंपनी के किसी कर्मचारी को ऋण जैसे व्यक्तिगत लेन-देन में प्रवेश करने से निषिद्ध करता

हो। ऐसे किसी नियम के अभाव में, *प्रथम दृष्ट्या* यह कहना कठिन है कि कोई ऋण लेना या उससे इनकार करना कदाचार के कृत्य कैसे कहा जा सकता है।

उक्त आरोपों की विधिवत जाँच तत्पश्चात की गई, जिसमें उत्तरदाता को निस्संदेह सुनवाई का अवसर तथा अपनी इच्छा के अनुसार साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर दिया गया। जाँच के अंत में, जाँच अधिकारी ने निम्नलिखित निष्कर्ष दिए—

(1) कि अगस्त से दिसम्बर, 1960 के बीच उत्तरदाता अपने कार्य में अनियमितताओं का दोषी था,

(2) कि माल उधार पर बेचा गया था और इसके अतिरिक्त उत्तरदाता उन बिक्री की प्राप्तियाँ प्रेषित करने में विफल रहा,

(3) कि भविष्य में नियमित रहने के उसके द्वारा दिए गए आश्वासनों के बावजूद उत्तरदाता उन पर खरा नहीं उतरा,

(4) कि जिस अवधि में उत्तरदाता काठमांडू में था, उस दौरान कंपनी का व्यवसाय कम रहा और यह वहाँ की बाजार स्थिति के संबंध में कंपनी को सूचित न करने तथा पटना शाखा के अधिकारियों द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन न करने के कारण था,

(5) कि उत्तरदाता ने थोक व्यापारियों से अपने व्यक्तिगत खाते पर ऋण लिए थे, जिनके लिए उसने उक्त दो ऋण-पत्र निष्पादित किए थे,

(6) कि उक्त दो रसीदें निष्पादित कर उसने यह प्रतीत कराया मानो उक्त धनराशियाँ प्रेषण के लिए उसे दी गई धनराशियों का हिस्सा थीं, जिससे थोक व्यापारियों को यह आरोप लगाने में सक्षम बनाया गया कि उन्होंने उन्हें प्रेषण के लिए सौंप दिया था और वे उनके लिए अब कंपनी के प्रति उत्तरदायी नहीं थे,

(7) कि 7, 8, 9 तथा 10 दिसम्बर, 1960 के पत्र उत्तरदाता द्वारा स्वेच्छा से शाखा प्रबंधक को लिखे गए थे, और

(8) कि यह संभव था कि उक्त दो रसीदें उत्तरदाता से जबरन प्राप्त की गई थीं।

जाँच अधिकारी ने अपनी प्रतिवेदन का उपसंहार इस निष्कर्ष के साथ किया कि यह आरोप कि उत्तरदाता ने अपनी स्थिति का लाभ उठाकर थोक व्यापारियों के साथ व्यक्तिगत लेन-देन किए, संतोषजनक रूप से सिद्ध हो गया है और कि उसने कंपनी द्वारा उसमें निहित विश्वास का दुरुपयोग किया है तथा सुनियोजित अनियमित कार्य और कंपनी के निर्देशों की अवज्ञा द्वारा उसने अपनी "अवैध गतिविधियों" को छिपाने के उद्देश्य से सभी को अंधेरे में रखा। प्रतिवेदन का अंत इस कथन के साथ हुआ कि "सभी आरोप" किसी भी युक्तियुक्त संदेह से परे ठोस साक्ष्य द्वारा संतोषजनक रूप से स्थापित हो गए हैं। 20 सितम्बर, 1961 दिनांकित आदेश द्वारा उत्तरदाता को कंपनी की सेवा से "आपके द्वारा किए गए तथा आपके विरुद्ध सिद्ध किए गए उपर्युक्त कदाचार के कारण तत्काल प्रभाव से" निष्कासित कर दिया गया।

उपर्युक्त निष्कर्षों से यह स्पष्ट है कि यद्यपि आरोप-पत्र में उत्तरदाता के विरुद्ध केवल दो कदाचार के कृत्य आरोपित किए गए थे, जाँच अधिकारी ने आरोप-पत्र की परिसीमा से बाहर कई अन्य विषयों पर भी साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति दी, जैसे कि दिसम्बर, 1960 से पूर्व उत्तरदाता द्वारा की गई कथित अनियमितताएँ, पटना शाखा द्वारा दिए गए निर्देशों की उसकी कथित अवज्ञा, उसके द्वारा दिए गए आश्वासनों पर खरा न उतरना आदि, और इसके अतिरिक्त जाँच अधिकारी ने उन विषयों पर भी अपने निष्कर्ष दिए जो आरोपों का विषय नहीं थे।

निष्काषण के आदेश से आहत होकर, उत्तरदाता ने बिहार दुकान एवं स्थापना अधिनियम, 1953 की धारा 26 के अंतर्गत श्रम न्यायालय, पटना में एक शिकायत दायर की, जिसमें उसने *अन्य बातों के साथ* निम्नलिखित अभ्यावेदन किया—

(क) कि उसकी सेवाओं से निष्कासित करने के लिए कोई युक्तियुक्त कारण नहीं था,

(ख) कि वह किसी भी कदाचार का दोषी नहीं था,

(ग) कि उसने थोक व्यापारियों के साथ कोई व्यक्तिगत लेन-देन नहीं किया था, और

(घ) कि "कंपनी के अधिकारियों ने थोक व्यापारियों के साथ मिलीभगत करके तथा अपनी घोर लापरवाही को बचाने के लिए, याचिकाकर्ता से भय और अनुचित प्रभाव के अधीन कथन प्राप्त किए।"

उक्त शिकायत के उत्तर में कंपनी ने यह आरोप लगाया कि सावधानीपूर्वक जाँच के पश्चात तथा उसमें प्रस्तुत साक्ष्य और जाँच अधिकारी के निष्कर्षों के आधार पर कंपनी इस निष्कर्ष पर पहुँची कि "याचिकाकर्ता उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों का दोषी था" और उसने उसे सेवा से पदच्युत करने के स्थान पर कंपनी की सेवा से निष्कासित करने का निर्णय लिया, "जबकि मामले के तथ्य एवं परिस्थितियाँ तथा याचिकाकर्ता के विरुद्ध स्थापित आरोप उसे पदच्युत करने को पूर्णतः न्यायोचित ठहराते थे।" इन अभ्यावेदनों पर श्रम न्यायालय ने विचारार्थ निम्नलिखित चार प्रश्न निर्धारित किए—

(1) क्या उक्त थोक व्यापारियों ने उत्तरदाता को उक्त दोनों राशियाँ अग्रिम दी थीं?

(2) क्या थोक व्यापारियों द्वारा की गई उधार बिक्री कंपनी के साथ हुए उनके करार के विपरीत थी?

(3) क्या वह पटना स्थित कंपनी अधिकारियों की सहमति और जानकारी से की गई थी? और

(4) क्या कंपनी के उक्त अधिकारियों ने, इस आशंका से कि उधार बिक्री की अनुमति देने के लिए उनके विरुद्ध प्रधान कार्यालय द्वारा कार्रवाई की जा सकती है, उत्तरदाता से विभिन्न पत्रों के माध्यम से यह स्वीकार कराया कि उक्त दोनों राशियाँ उसे व्यक्तिगत ऋण के रूप में दी गई थीं?

पक्षकारों की सहमति से श्रम न्यायालय ने घरेलू जाँच में अभिलेखित साक्ष्य को वास्तविक साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया तथा पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत कुछ अन्य साक्ष्य भी अभिलेखित किए और अंततः निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले—

(1) कि घरेलू जाँच विधिवत रूप से आयोजित की गई थी,

(2) कि कंपनी का यह कथन कि घरेलू जाँच के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने का उसे केवल तभी अधिकार है जब सद्भाव का अभाव, पीड़न, अनुचित श्रम व्यवहार, जाँच अधिकारी द्वारा कोई मूलभूत त्रुटि, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन, या निष्कर्षों का आधारहीन या विकृत होना सिद्ध हो, गलत था, और कि धारा 26 (2) तथा (5) के अंतर्गत वह साक्ष्य अभिलेखित कर सकती है और घरेलू जाँच के निष्कर्षों से स्वतंत्र होकर अपने निष्कर्षों पर पहुँच सकती है,

(3) कि उत्तरदाता का यह कथन सही था कि 8 दिसम्बर, 1960 को थोक व्यापारियों ने उससे 3 अक्टूबर, 1960 तथा 2 दिसम्बर, 1960 दिनांकित उक्त दो रसीदें जबरन प्राप्त की थीं,

(4) कि थोक व्यापारियों से कोई ऋण न लेने से उत्तरदाता का इनकार तथा नेपाल न्यायालय में उसके द्वारा आपराधिक शिकायत दायर करना "न्यायसंगत प्रतीत होता है",

(5) कि कंपनी का यह मामला कि थोक व्यापारियों ने उत्तरदाता को 11,000 रुपये ऋण के रूप में दिए थे, सही नहीं था, और

(6) कि उत्तरदाता के इस कथन में बल था कि कंपनी के अधिकारियों ने, इस आशंका से कि उधार बिक्री में मिलीभगत करने के लिए उनके विरुद्ध कार्रवाई की जा सकती है, उत्तरदाता से यह स्वीकार कराया कि उसने व्यक्तिगत ऋण लिए थे, जिनकी राशि उक्त उधार बिक्री के अंतर्गत देय मूल्य थी।

इन निष्कर्षों के आधार पर श्रम न्यायालय ने उत्तरदाता की शिकायत स्वीकार की, कंपनी द्वारा पारित निष्काषण के आदेश को अपास्त किया और उसकी पुनर्नियुक्ति का निर्देश दिया।

कंपनी की ओर से अधिवक्ता ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि कंपनी द्वारा पारित आदेश *साधारण* निष्काषण का आदेश था, न कि दंड के रूप में पारित आदेश। यह तर्क दी गई कि वास्तविक स्थिति यह थी कि उत्तरदाता को बिक्री को बढ़ावा देने के लिए काठमांडू भेजा गया था और कंपनी के प्रतिनिधि के रूप में उसका कर्तव्य था कि वह यह सुनिश्चित करे कि थोक व्यापारी समस्त बिक्री प्राप्तियाँ नियमित रूप से पूर्ण रूप से प्रेषित करें; कि जिस स्थिति में वह था, यदि वह अपनी व्यक्तिगत क्षमता में भी ऋण लेता, तो वह स्वयं को ऐसी स्थिति में डाल देता जहाँ वह थोक व्यापारियों से समुचित पालन कराने में असमर्थ रहता और परिणामस्वरूप उसने स्वयं को ऐसी स्थिति में डाल दिया जहाँ कर्तव्य और हित के बीच टकराव होना निश्चित था। इन परिस्थितियों में कंपनी के लिए उस पर विश्वास और भरोसा बनाए रखना संभव नहीं था और कंपनी उसे अपनी सेवा में बनाए रखने से इंकार करने में न्यायोचित थी।

किन्तु यह तर्क दो मान्यताओं पर आधारित है : (1) कि उत्तरदाता ने थोक व्यापारियों से ऋण लिए थे, और (2) कि प्रबंधन का आदेश *साधारण* निष्काषण का आदेश था। जहाँ तक (1) का प्रश्न है, श्रम न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि उत्तरदाता का यह कथन कि उसने ऋण नहीं लिए थे, बल्कि 7 से 10 दिसम्बर, 1960 के बीच उसके द्वारा लिखे गए ऋण-पत्र और पत्र शाखा प्रबंधक के कहने पर उससे प्राप्त किए गए थे और उक्त दो रसीदें उससे जबरन प्राप्त की गई थीं, न्यायसंगत था। वह तथ्यात्मक निष्कर्ष होने के कारण, अनुच्छेद 136 के अंतर्गत इस अपील में, इस न्यायालय द्वारा निरंतर अपनाई गई प्रथा के अनुसार, हम उस निष्कर्ष के पीछे जाने के लिए न्यायोचित नहीं हैं, सिवाय उन सुविख्यात आधारों के जैसे कि निष्कर्षों का विकृत या अनुचित होना। श्रम न्यायालय के समक्ष उपलब्ध साक्ष्य के प्रकाश में, कंपनी के अधिवक्ता उस आधार पर उक्त निष्कर्ष पर प्रहार नहीं कर सके। जहाँ तक (2) का संबंध है, यह तर्क कि आदेश *साधारण* निष्काषण का आदेश था और दंड के रूप में नहीं, हमारे समक्ष उपलब्ध अभिलेख से असंगत है और स्पष्टतः अस्थिर है। आरोप-पत्र में उन कृत्यों के आरोप थे जिन्हें कंपनी ने "कदाचार के कृत्य" कहा। जाँच अधिकारी के निष्कर्ष यह थे कि उत्तरदाता के विरुद्ध आरोपित कदाचार के कृत्य सिद्ध हो गए थे; प्रबंधन द्वारा पारित निष्काषण का आदेश उन्हीं निष्कर्षों के परिणामस्वरूप पारित किया गया था और उस आदेश में स्पष्ट शब्दों में कहा गया था कि वह दंड के रूप में पारित किया गया है। अंततः, श्रम न्यायालय के समक्ष शिकायत के अभ्यावेदनों के उत्तर में कंपनी द्वारा दायर लिखित कथन में भी कंपनी का यह मामला था कि उत्तरदाता उसके विरुद्ध लगाए गए कदाचार के आरोपों का दोषी पाया गया था, किन्तु कंपनी ने उसे पदच्युत करने के स्थान पर सेवा से निष्कासित कर दंडित करना अधिक उचित समझा, जबकि परिस्थितियों में कंपनी उसे पदच्युत करने में भी न्यायोचित होती। ऐसी स्थिति में यह विधिसंगत रूप से तर्क नहीं किया जा सकता कि आदेश *साधारण* निष्काषण का आदेश था और दंड के रूप में नहीं।

दूसरा तर्क जो अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया, यह था कि अधिनियम की धारा 26 का अनुप्रयोग नहीं हो सकता क्योंकि वह श्रम न्यायालय को उसके अंतर्गत केवल उन मामलों में शिकायत सुनने का अधिकार देती है जिनमें कदाचार अधिनियम के अंतर्गत बनाए गए नियमों में परिभाषित हो। धारा 40 (2) राज्य सरकार को उसमें निर्दिष्ट विषयों पर नियम बनाने की शक्ति प्रदान करती है और खंड (ग) सरकार को ऐसे कदाचार के संबंध में नियम बनाने का अधिकार देता है जिनके लिए उप-धारा (1) धारा 26 के अंतर्गत अपेक्षित सूचना के बिना कर्मचारी की सेवाएँ समाप्त की जा सकती हैं। बिहार दुकान एवं स्थापना नियम, 1955 का नियम 20 यह प्रावधान करता है कि उसमें वर्णित कृत्यों में से प्रत्येक को धारा 26 की उप-धारा (1) के परंतुक के प्रयोजनों के लिए कदाचार माना जाएगा। यह स्पष्ट है कि आरोप-पत्र में उत्तरदाता के विरुद्ध आरोपित कदाचार नियम 20 में उल्लिखित विभिन्न कृत्यों के अंतर्गत नहीं आते। तर्क यह था कि जिस कदाचार के आधार पर कंपनी ने निष्काषण का आदेश पारित किया, यह मान भी लिया जाए कि वह दंड के रूप में था, नियम 20 में वर्णित कदाचारों में से कोई नहीं है और इसलिए धारा 26 (2) तथा (5) का कोई अनुप्रयोग नहीं है। अतः श्रम न्यायालय को शिकायत सुनने का कोई अधिकार नहीं था, और उसे सुनवाई करने का तो और भी नहीं, और परिणामस्वरूप उसके द्वारा पारित आदेश क्षेत्राधिकार के अभाव में था।

हमारे विचार में यह तर्क भ्रांत है और धारा 26 की स्पष्ट भाषा तथा उसकी योजना से समर्थित नहीं है। धारा 26, जैसा कि बिहार अधिनियम 26 सन् 1959 द्वारा संशोधन के पश्चात विद्यमान है, उप-धारा (1) द्वारा यह प्रावधान करती है कि कोई भी नियोक्ता ऐसे किसी कर्मचारी को, जो कम से कम छह माह की अवधि तक निरंतर उस नियोजन में रहा हो, युक्तियुक्त कारण के बिना तथा ऐसे कर्मचारी को कम से कम एक माह की सूचना या उसके बदले एक माह का वेतन दिए बिना, सेवा से पदच्युत या निष्कासित नहीं करेगा। इस प्रकार उप-धारा (1) पदच्युत और निष्काषण के सभी मामलों पर लागू होती है और दोनों ही मामलों

में (1) युक्तियुक्त कारण तथा (2) एक माह की सूचना या उसके बदले एक माह का वेतन, दोनों की अपेक्षा करती है। इसके पश्चात एक परंतुक है, जो यह उपबंधित करता है कि जहाँ ऐसे कर्मचारी की सेवाएँ ऐसे कदाचार के आरोप पर समाप्त की जाती हैं जैसा कि राज्य सरकार द्वारा विनिर्दिष्ट किया जाए और जो इस प्रयोजन के लिए आयोजित जाँच में अभिलेखित संतोषजनक साक्ष्य से समर्थित हो, वहाँ ऐसी सूचना आवश्यक नहीं होगी। यह स्पष्ट है कि उप-धारा (1) का मुख्य भाग सामान्य है और पदच्युत तथा निष्काषण के सभी मामलों पर लागू होता है, जबकि परंतुक ऐसे मामलों को अपवाद के रूप में अलग करता है जहाँ किसी कर्मचारी की सेवाएँ नियम 20 में उल्लिखित कदाचार के लिए समाप्त की जाती हैं और जहाँ ऐसी समाप्ति एक घरेलू जाँच में अभिलेखित संतोषजनक साक्ष्य से समर्थित होती है। ऐसे सीमित मामलों में परंतुक उप-धारा (1) के अंतर्गत अपेक्षित सूचना से छूट देता है। इस प्रकार परंतुक केवल राज्य सरकार द्वारा विनिर्दिष्ट प्रकार के कदाचारों पर लागू होता है और अन्य कदाचारों पर नहीं। उप-धारा (2) तत्पश्चात यह प्रावधान करती है कि प्रत्येक कर्मचारी "जो इस प्रकार पदच्युत या निष्कासित किया गया हो" निर्धारित प्राधिकारी (इस प्रकरण में श्रम न्यायालय) के समक्ष निम्नलिखित तीन में से किसी एक आधार पर शिकायत दायर कर सकता है, अर्थात्—

(1) कि उसकी सेवाओं से निष्कासित करने के लिए कोई युक्तियुक्त कारण नहीं था, या

(2) कि उप-धारा (1) द्वारा अपेक्षित कोई सूचना उसे नहीं दी गई, या

(3) कि वह नियोक्ता द्वारा ठहराए गए "किसी भी कदाचार" का दोषी नहीं था।

इस प्रकार उप-धारा (2) कर्मचारी को उसमें उल्लिखित तीन में से किसी एक आधार पर श्रम न्यायालय के समक्ष शिकायत दायर करने का अधिकार प्रदान करती है। "जो इस प्रकार पदच्युत या निष्कासित किया गया हो" शब्दों का अर्थ उप-धारा (1) में वर्णित पदच्युत या निष्काषण से है, अर्थात् वे सभी मामले जहाँ नियोक्ता अपने कर्मचारी को पदच्युत या

निष्कासित करता है और जिन मामलों में उप-धारा (1) यह अपेक्षा करती है कि ऐसे आदेश के लिए युक्तियुक्त कारण हो तथा एक माह की सूचना या उसके बदले एक माह का वेतन दिया गया हो। अतः यह स्पष्ट है कि कोई नियोक्ता अपने कर्मचारी को बिना युक्तियुक्त कारण के तथा बिना सूचना या उसके बदले एक माह का वेतन दिए, न तो पदच्युत कर सकता है और न ही निष्कासित कर सकता है। किन्तु जब नियोक्ता यह आरोप भी लगाता है कि उसके पास अपने कर्मचारी को पदच्युत या निष्कासित करने के लिए युक्तियुक्त कारण था, तब भी विषय समाप्त नहीं हो जाता। "इस प्रकार पदच्युत या निष्कासित किए गए" कर्मचारी को उप-धारा (2) के अंतर्गत उक्त तीन में से किसी एक आधार पर शिकायत दायर करने का अधिकार है, अर्थात् कि वास्तव में कोई युक्तियुक्त कारण नहीं था, या कि उसे कोई सूचना नहीं दी गई थी, या कि वह "किसी भी कदाचार" का दोषी नहीं था। "किसी भी कदाचार" शब्द यह दर्शाते हैं कि उप-धारा (2) केवल नियम 20 में उल्लिखित कदाचारों तक सीमित नहीं है। यदि अधिवक्ता की यह तर्क सही होता, तो वह आधार कि उप-धारा (1) द्वारा अपेक्षित सूचना नहीं दी गई थी, निरर्थक हो जाता, क्योंकि नियम 20 में विनिर्दिष्ट कदाचारों के मामलों में ऐसी कोई सूचना आवश्यक ही नहीं होती। उप-धारा (2) में प्रयुक्त शब्द "जैसा कि उप-धारा (1) द्वारा अपेक्षित है" इसके विपरीत, यह प्रचुर रूप से स्पष्ट करते हैं कि उप-धारा (2) पदच्युत और निष्काषण के सभी मामलों पर लागू होती है और केवल परंतुक के अंतर्गत आने वाले मामलों तक सीमित नहीं है। उप-धारा (5) यह प्रावधान करती है कि निर्धारित प्राधिकारी उक्त शिकायत के संबंध में नियोक्ता को सूचना देने की व्यवस्था करेगा, पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य को संक्षेप में अभिलेखित करेगा, उन्हें सुनेगा और ऐसी जाँच करने के पश्चात, जिसे वह आवश्यक समझे, कारण सहित आदेश पारित करेगा। यह धारा निर्धारित प्राधिकारी को कर्मचारी को पुनर्नियुक्ति या प्रतिकर अथवा दोनों के रूप में प्रतितोष प्रदान करने की शक्ति भी देती है। धारा 26 की उप-धाराओं (1) और (2) की स्पष्ट भाषा के प्रकाश में, अधिवक्ता हमसे यह अपेक्षा नहीं कर सकते कि हम उन मामलों को सीमित कर दें

जिनमें शिकायत केवल तभी दायर की जा सकती है जब कदाचार नियम 20 में उल्लिखित हो। हमारे विचार में उप-धारा (1) के परंतुक का एकमात्र उद्देश्य यह है कि उन मामलों में सूचना की आवश्यकता से छूट दी जाए जहाँ किसी कर्मचारी की सेवाएँ ऐसे कदाचार के लिए समाप्त की जाती हैं जिसे राज्य सरकार ने नियम 20 में सम्मिलित किया है। उस परंतुक में इससे अधिक कुछ पढ़ना, जैसा कि अधिवक्ता ने हमें करने के लिए आमंत्रित किया, परंतुक तथा उप-धाराओं (1) और (2) की स्पष्ट भाषा के प्रतिकूल होगा। अतः यह तर्क अस्वीकार किया जाता है।

अगला तर्क यह प्रस्तुत किया गया कि वर्तमान मामले में कदाचार नियम 20 में उल्लिखित कदाचारों में से नहीं होने के कारण, घरेलू जाँच के पश्चात कंपनी द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप करने का श्रम न्यायालय का क्षेत्राधिकार सीमित है, अर्थात् केवल वहीं जहाँ प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ हो, या जहाँ आदेश विकृत हो, या जहाँ उत्पीड़न अथवा अनुचित श्रम व्यवहार हो। इस प्रकार के मामलों में, तर्क के अनुसार, श्रम न्यायालय का क्षेत्राधिकार औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 33क के अंतर्गत क्षेत्राधिकार के समान होगा।

यह तर्क पुनः धारा 26 (2) तथा (5) की स्पष्ट भाषा के प्रतिकूल है। अधिनियम की धारा 26 और औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 33क के बीच कोई तुलना नहीं है। दोनों धाराओं के उद्देश्य भी भिन्न हैं। धारा 26 की भाषा स्पष्ट रूप से यह दर्शाती है कि जब उप-धारा (2) में उल्लिखित किसी भी आधार पर शिकायत दायर की जाती है, तो उप-धारा (5) में विनिर्दिष्ट प्रक्रिया लागू होगी और सक्षम प्राधिकारी को साक्ष्य अभिलेखित करने तथा उस साक्ष्य के आधार पर अपने स्वतंत्र निष्कर्षों पर पहुँचने का अधिकार है। इस प्रकार प्राधिकारी को पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत एवं उसके द्वारा अभिलेखित साक्ष्य के आधार पर, घरेलू जाँच में दिए गए निष्कर्षों से स्वतंत्र होकर, अपने निष्कर्षों पर पहुँचना आवश्यक है। यह बात उप-

धारा (2) से भी स्पष्ट है, जिसके अंतर्गत कर्मचारी को यह प्रदर्शित करने का अधिकार है कि उसकी सेवाओं से निष्कासित करने के लिए कोई युक्तियुक्त कारण नहीं था या कि वह उस कदाचार का दोषी नहीं था जिसके लिए उसे आरोपित किया गया था और घरेलू जाँच में दोषी ठहराया गया था। यह तथ्य कि उसे शिकायत दायर करने और यह प्रदर्शित करने का अधिकार है कि कोई युक्तियुक्त कारण नहीं था या कि वह कदाचार का दोषी नहीं था, यह दर्शाता है कि धारा 26 के अंतर्गत सक्षम प्राधिकारी को उसके समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर, घरेलू जाँच के निष्कर्षों की परवाह किए बिना, अपने स्वतंत्र निष्कर्षों पर पहुँचना होता है। धारा 26 के अंतर्गत कार्यवाहियाँ घरेलू जाँच में या उसके परिणामस्वरूप पारित आदेश के विरुद्ध अपील के रूप में नहीं हैं; वे स्वतंत्र और मौलिक कार्यवाहियाँ हैं, जिनमें सक्षम प्राधिकारी (इस प्रकरण में श्रम न्यायालय) को उसके समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य के मूल्यांकन पर, न कि घरेलू जाँच में प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर, अपने निष्कर्षों पर पहुँचना होता है। ऐसा होने पर यह नहीं कहा जा सकता कि धारा 26 के अंतर्गत सक्षम प्राधिकारी का क्षेत्राधिकार औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 33क के अंतर्गत आने वाले मामलों की भाँति सीमित है। इस संदर्भ में हमारे समक्ष दो निर्णय प्रस्तुत किए गए—एक, पटना उच्च न्यायालय का, *जगदीश वस्त्रालावा बनाम बिहार राज्य* ([1]), और दूसरा, मैसूर उच्च न्यायालय का, *स्पेंसर एंड कंपनी लिमिटेड बनाम श्रम आयुक्त* के मुख्यालय सहायक ([2])। तथापि, ये निर्णय कोई सहायता प्रदान नहीं करते। यद्यपि पटना का निर्णय अधिनियम की धारा 26 से संबंधित है, उसमें लगभग कोई तर्क नहीं दिया गया है। दूसरा निर्णय भी सहायक नहीं हो सकता, क्योंकि मैसूर अधिनियम के जिन उपबंधों पर वहाँ विचार किया गया था, वे हमारे समक्ष विद्यमान धारा 26 के *समान प्रकृति* के नहीं हैं।

---

1 ए. आई. आर. 1964 पटना 180

2 [1963] 2 एल. एल. जे. 603

अंतिम तर्क यह था कि किसी भी स्थिति में श्रम न्यायालय का आदेश विकृत था, क्योंकि वह इस मान्यता पर आधारित था कि थोक व्यापारियों के साथ हुए करार के अंतर्गत थोक व्यापारियों को उधार पर चाय बेचने से निषिद्ध किया गया था। हमने उस करार का परीक्षण किया है और हम पाते हैं कि यह नहीं कहा जा सकता कि श्रम न्यायालय द्वारा किया गया अर्थान्वयन गलत था, और अतः उसका तर्क असंगत या भ्रांत नहीं कहा जा सकता।

हमारे विचार में कंपनी के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत कोई भी तर्क स्वीकार्य नहीं है। अतः अपील निरस्त की जाती है, जैसा कि हम करते हैं। तथापि, मामले की परिस्थितियों में, हम यह उचित समझते हैं कि प्रत्येक पक्ष अपने-अपने व्यय वहन करेगा।

आर.के.पी.एस. *अपील निरस्त की गई।*

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।